# सवालीराम

**सवाल:** फिल्म में ऐसा क्या होता है जो सब चलते-फिरते दिखते हैं?

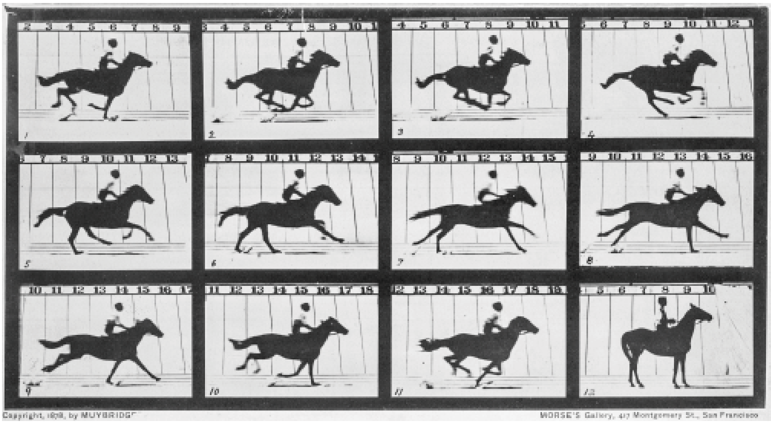
**- कक्षा 8, राधास्वामी हाई स्कूल, टिमरनी,**

**(होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम) होशंगाबाद, म.प्र., 1994**

**जवाब:** जब मैंने यह सवाल पढ़ा तो मेरा खयाल था कि मुझे इसका जवाब पता है। लेकिन सोचा कि एक बार फिर कुछ पढ़ लेने में कोई बुराई नहीं है। और जब मैंने पढ़ा तो समझ में आया कि जो जवाब मैं जानता था, वह गलत था और बहुत गलत था। कारण यह है कि दृष्टि यानी देखने की क्रिया के बारे में हमारी समझ कमोबेश रेटिना पर होने वाली जैव-रासायनिक अभिक्रियाओं पर टिकी थी जबकि अब यह स्पष्ट हो गया है कि देखने में मस्तिष्क भी काफी पेचीदा ढंग से शामिल होता है।

तो पहले वही जवाब बताता हूँ जो मुझे पता था और गलत निकला। कहते हैं कि चलचित्र में लगातार हरकत इसलिए दिखाई देती है क्योंकि हमारे रेटिना (यानी वह पर्दा जिस पर प्रतिबिम्ब बनते हैं) पर जब किसी चीज़ की छवि बनती है, तो वह उस चीज़ के हट जाने के बाद भी कुछ समय तक बनी रहती है। इसे विज्ञान की भाषा में पर्सिस्टेंस ऑफ विज़न (यानी छवि का टिके रहना) कहते हैं। तो होता यह है कि जब इस पहली छवि के मिटने से पहले ही कोई दूसरी छवि (जो पहली का थोड़ा परिवर्तित रूप हो) आ जाती है, तो हम इन्हें एक ही छवि का बदलता रूप मान लेते हैं। इसलिए हमें ये दो छवियाँ नहीं, बल्कि एक ही छवि में हरकत का एहसास देती हैं। ऐसा यदि थोड़ी-थोड़ी बदलती छवियों के साथ बार-बार सिलसिलेवार ढंग से हो तो हमें लगेगा कि हम अलग-अलग चित्र नहीं बल्कि एक ही चित्र को बदलता हुआ देख रहे हैं। यहाँ मुख्य बात यह है कि वास्तव में कोई गति नहीं हो रही है, हमें मात्र इसका एहसास हो रहा है।

काफी समय तक इसी बात को माना जाता था। लेकिन इसमें एक समस्या है। समस्या यह है कि यदि एक छवि के मिटने से पहले दूसरी छवि आ जाए, तो वे एक-दूसरे पर आरोपित हो जाएँगी यानी छवियों की थप्पियाँ बनती जाएँगी। तब हमें जो एहसास होगा, वह धुँधलेपन का होगा - चलने-फिरने का नहीं। कहने का मतलब है कि लगातार अटूट गति दिखने के लिए ज़रूरी है कि छवियाँ



*चित्र-1: 'द हॉर्स इन मोशन' (गतिमान घोड़ी) वर्ष 1878 में एडवर्ड मायब्रिज द्वारा खींची गई 12 तस्वीरों की एक क्रमबद्ध श्रृंखला है जिसमें सैली गार्डनर नाम की घोड़ी को दौड़ते हुए देखा जा सकता है। हर दो सिलसिलेवार तस्वीरों के खींचे जाने के बीच (आखिरी तस्वीर को छोड़कर) करीब आधे सेकण्ड का अन्तराल है। इन्हें आँखों के सामने तेज़ी-से (कम-से-कम 24 फ्रेम प्रति सेकण्ड की रफ्तार से) एक-के-बाद-एक गुज़ारने से घोड़ी के दौड़ने का आभास होता है। यही सिद्धान्त फिल्म-मेकिंग में 'फ्रेम रेट' की बुनियाद है। और इसलिए इस ऐतिहासिक तस्वीर श्रृंखला ने मोशन पिक्चर (चलचित्र) के बीज बोने में एक अहम भूमिका निभाई।*

(थोड़ी-थोड़ी बदलती हुई) एक-के-बाद-एक आएँ।

इसी को आगे बढ़ाते हुए यह भी कहा गया कि यदि आँख के सामने एक के बाद कई वस्तुएँ, जो एक-दूसरे से क्रमिक रूप से भिन्न हों, थोड़े-थोड़े समय अन्तराल पर प्रकट हों तो रेटिना पर बनी उनकी छवियाँ आपस में जुड़ जाती हैं और ऐसा लगता है कि एक ही वस्तु धीरे-धीरे बदलती जा रही है।

दरअसल, चलचित्र के सवाल को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है – पहला कि छवि निरन्तर क्यों दिखती है (यानी हमें एक-के-बाद-एक स्थिर चित्र क्यों नज़र नहीं आते), और दूसरा कि वह चलती-फिरती क्यों दिखती है (वे एक-के-बाद-एक स्थिर चित्रों की एक श्रृंखला क्यों नहीं नज़र आती)?

इस सन्दर्भ में एक प्रयोग यह किया गया था कि यदि व्यक्ति को दो पास-पास रखे प्रकाश बिन्दु एक-के-बाद-एक लगातार जलते-बुझते दिखाए जाएँ तो उसे लगता है कि ये दो बिन्दु नहीं हैं, बल्कि एक ही बिन्दु है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा रहा है। कारण यह बताया गया कि जब एक बिन्दु को प्रकाशित किया जाता है तो उसका

प्रतिबिम्ब रेटिना पर बनता है। जब इस बिन्दु को अप्रकाशित करके पास के बिन्दु को प्रकाशित किया जाता है तो आँख पर पहले बिन्दु का प्रतिबिम्ब मिटा नहीं होता है और तभी दूसरा बिन्दु प्रकट हो जाता है। इसलिए दिमाग उसे पहले बिन्दु की गति समझ लेता है। इस व्याख्या की मूल बात यह थी कि दोनों बिन्दुओं के प्रकट होने के बीच, समय का अन्तराल एक सीमा से कम होगा, तभी दो प्रतिबिम्ब आपस में घुल-मिल जाएँगे। यदि अन्तराल इससे अधिक हुआ तो वे दोनों बिन्दु अलग-अलग ही दिखाई देंगे। इसे फ्लिकर (यानी क्रमिक रूप से जल-बुझ) कहते हैं। शोधकर्ताओं ने कहा कि फ्लिकर तेज़ रफ्तार से हो, तो वह नज़र नहीं आती और निरन्तरता का एहसास पैदा करती है। इसके अलावा, इस प्रभाव के लिए एक बात और ज़रूरी है – उन दो बिन्दुओं के बीच की दूरी। यदि दूरी बहुत कम हुई तो वह एक ही बिन्दु जलता-बुझता दिखेगा और दूरी बहुत अधिक हुई तो दो बिन्दु अलग-अलग ही दिखते रहेंगे। एक ही बिन्दु को चलते-फिरते देखने के लिए ज़रूरी है कि वे दो बिन्दु आँखों पर जो कोण बनाएँ, वह 1 डिग्री का लगभग साठवाँ अंश हो। पहले वाले मामले को फ्लिकर फ्यूज़न यानी जलने-बुझने का घुल-मिल जाना कहते हैं।

इस व्याख्या में भी माना गया था कि जो कुछ भी हो रहा है, वह रेटिना के स्तर पर हो रहा है। और कुछ हद तक पर्सिस्टेंस ऑफ विज़न की बात भी शामिल थी। लेकिन एक बात साफ थी कि बिन्दुओं के जलने-बुझने के बीच का अन्तराल बहुत महत्व रखता है। आगे के अनुसंधान ने स्पष्ट किया कि यह घटना रेटिना के स्तर पर नहीं बल्कि मस्तिष्क के स्तर पर होती है।

लेकिन कुछ शोधकर्ता यह समझने के प्रयास में लगे थे कि वास्तविक गति और आभासी गति के बीच कोई अन्तर है भी या नहीं। इसे समझना बहुत मुश्किल है क्योंकि देखने की क्रिया बहुत ज़्यादा पेचीदा है। रेटिना पर प्रतिबिम्ब बनता है, फिर रेटिना की तंत्रिकाएँ (प्रकाशीय तंत्रिकाएँ) इस सूचना को मस्तिष्क को पहुँचाती हैं, और अन्त में मस्तिष्क इन सूचनाओं की व्याख्या करता है। फिलहाल, वैज्ञानिक मानते हैं कि आभासी गति को समझने का काम मस्तिष्क में होता है। लेकिन फिलहाल इसकी क्रियाविधि निश्चित तौर पर पता नहीं है।

कुछ शोधकर्ताओं का मत है कि दरअसल आभासी और वास्तविक गति की अनुभूति के बीच कोई अन्तर नहीं है। उनके अनुसार मस्तिष्क को जब कोई तंत्रिका सन्देश मिलता है तो वह उसकी कोई अर्थपूर्ण व्याख्या करना चाहता है। किसी चीज़ के बारे में यदि सन्देश यह मिले कि वह

थोड़ी-थोड़ी बदल रही है, तो मस्तिष्क दो प्रतिबिम्बों के बीच की अवस्था की कल्पना करके उस अन्तराल को भर देता है। ज़रूरत सिर्फ इतनी होती है कि वे एक निश्चित गति से प्रकट हों। एक-एक स्थिर चित्र (यानी फ्रेम) के सामने आने की रफ्तार बहुत महत्व रखती है। प्रति सेकण्ड 16-24 चित्र ठीक माने जाते हैं। वैसे यह रफ्तार काफी हद तक टेक्नॉलॉजी पर निर्भर होती है। यदि रफ्तार बहुत अधिक रहे तो कोई फायदा नहीं होता क्योंकि मस्तिष्क इनमें से कई फ्रेम्स को नज़रअन्दाज़ कर देता है।

कहते हैं कि जब हम फिल्म देखते हैं तो जितना समय पर्दे पर तस्वीर होती है, लगभग उतना ही समय पर्दा खाली रहता है। मस्तिष्क इस खाली पर्दे में अपनी कल्पना शक्ति से चित्र भर देता है। इसलिए मुख्य बात यह है कि मस्तिष्क को किसी तरह राज़ी किया जाए कि वह पर्दे के खालीपन को नज़रअन्दाज़ कर दे। शायद पर्सिस्टेंस ऑफ विज़न की भूमिका इस खालीपन को भरने में है, बस। एक रोचक बात के साथ समापन ठीक रहेगा - जब आप फ्लोरसेंट बल्ब या एलईडी बल्ब की रोशनी में बैठते हैं तो ये एक सेकण्ड में लगभग 60 बार बन्द-चालू होते हैं क्योंकि एसी करंट की दिशा बदलती रहती है। तो काफी समय ये कोई रोशनी नहीं देते किन्तु आपका दिमाग उन अँधेरी अवधियों को भर देता है और आपको लगातार रोशनी का एहसास होता है।

---

**सुशील जोशी:** *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

## इस बार का सवाल



**सवाल:** विद्यार्थी एक टेबल को 10 बार नापें तो उनकी नाप बराबर क्यों नहीं आती है?

**- कक्षा 6, अनांद विहार मॉडल हाई स्कूल, बाबई,**

**(होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम) होशंगाबाद, म.प्र., 1999**

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना लिखकर हमें भेज दीजिए। सवाल का जवाब देने वाले पाठकों को *संदर्भ* **की तीन साल की सदस्यता उपहार स्वरूप दी जाएगी।**